

महान् आचार्य नागार्जुन विरचित धर्मधातुस्तव

आर्यमञ्जुश्री कुमारभूत को नमस्कार

जिसका सम्यग् ज्ञान न होने से वे (जीव) तीन भवों में भ्रमण करते रहते हैं, समस्त सत्त्वों में नियत रूप से विद्यमान उस धर्मधातु को (आदरपूर्वक) प्रणाम करता हूँ ॥1॥

जो संसार का हेतु है, उसी को विशुद्ध कर देने से विशुद्ध हुआ वही निर्वाण है। वही धर्मकाय भी है ॥2॥

जैसे दूध के साथ मिला हुआ सारभूत-घृत स्पष्ट दिखाई नहीं देता है, उसी प्रकार क्लेशों से उपप्लुत धर्मधातु भी (लोगों को) दिखाई नहीं देता ॥3॥

जैसे दूध का विशोधन होने पर घृतद्रव्य विमल हो जाता है, उसी प्रकार क्लेशों का विशोधन होने पर धर्मधातु अत्यन्त विमल हो जाता है ॥4॥

जैसे घट के अन्दर स्थित दीपक तनिक भी भासित नहीं होता, उसी प्रकार क्लेश रूपी घट के भीतर स्थित धर्मधातु भी दिखाई नहीं देता है ॥5॥

जिस जिस ओर से घट में छेद कर दिया जाता है, उन उन दिशाओं से उसकी रश्मियाँ निर्गत होती हैं ॥6॥

जब वज्र (वज्रोपम) समाधि से उस (अज्ञान रूपी) घट को तोड़ दिया जाता है, उस समय आकाश-पर्यन्त (सब कुछ) चारों ओर से प्रकाशित हो जाता है ॥7॥

धर्मधातुस्तव

धर्मधातु न उत्पन्न होता है और न कभी भी निरुद्ध होता है। वह सभी कालों में क्लेशों से रहित एवं आदि, मध्य और अन्त (अर्थात् त्रिकाल में) मल रहित होता है॥8॥

जैसे वैडूर्य रत्न सभी कालों में प्रकाशमान होता है (किन्तु) पत्थर के भीतर स्थित होते समय उसकी प्रभा प्रकट नहीं होती है॥9॥

उसी प्रकार क्लेशों के द्वारा आवृत अत्यन्त निर्मल धर्मधातु की भी प्रभा संसार में प्रकाशित नहीं होती है, निर्वाण प्राप्त होने पर ही (वह) प्रकाशित होती है॥10॥

(पत्थरों में रत्न आदि) धातु स्थित होने पर (उनकी प्राप्ति के लिए) कार्य (व्यायाम) किए जाने से कनकादि का दर्शन होगा। (बुद्ध गर्भ) धातु (सत्त्व में) स्थित नहीं होने पर उसके प्रति कार्य व्यायाम किए जाने से मात्र कष्ट का उत्पाद होता है॥11॥

जैसे तुष से ढँके धान को चावल नहीं माना जाता है, उसी प्रकार क्लेशों से आवृत उस (धर्मधातु) को भी बुद्ध नहीं माना जाता है॥12॥

जैसे तुष से निर्मुक्त होने पर चावल दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार क्लेशों से मुक्त होने पर धर्मकाय (भी) प्रकाशित होता है॥13॥

कदली सारहीन होता है—ऐसा लोक में उपमा दिए जाने पर भी उसके मीठे अमृतोपम फल (केला) को खाया जाता है॥14॥

(इसी प्रकार) साररहित संसार में क्लेश-सागर से मुक्त (पार) हो जाने पर उसका फल बुद्धत्व समस्त प्राणियों का अमृत रूप हो जाता है॥15॥

समस्त बीजों से जिस प्रकार सदृश फल उद्भूत (सम्भव) होता है। (उसी

प्रकार) बिना बीज के फल होना किस बुद्धिमान के द्वारा जाना जा सकता है॥16॥

बीज के समान यह (धर्म) धातु ही समस्त धर्मों का आधार माना जाता है। क्रमशः शोधित होती हुई, वह बुद्धत्व पद का आवाहन करती है॥17॥

मल रहित सूर्य, चाँद, मेघ, कोहरा, धुँआ, राहुल-मुख तथा रज आदि पाँच आवरणों से आवृत्त होते हैं॥18॥

इसी प्रकार प्रभास्वर चित्त भी काम, व्यापाद, मिद्ध (आलस्य), औद्धत्य एवं विचिकित्सा, अर्थात् पाँच आवरणों से आवृत्त हैं॥19॥

जैसे अग्नि से शुद्ध (होने वाला) वस्त्र (पहले) नाना प्रकार के मल से मलिन होता है, उसको अग्नि में डाले जाने पर उसका मल जल जाता है, न कि वस्त्र (जलता है)॥20॥

उसी प्रकार प्रभास्वर चित्त राग आदि से मलिन है, ज्ञान अग्नि क्लेशों को जला देता है, न कि प्रभास्वर (चित्त) को॥21॥

जिनों (बुद्धों) के द्वारा निर्दिष्ट शून्यता का निरूपण करने वाले सूत्रों में जो कुछ कहा गया है, उन सबके द्वारा क्लेशों की ही निवृत्ति होती है, धातु का विनाश नहीं॥22॥

पृथिवी के भीतर स्थित जल जैसे मलरहित रहता है, उसी प्रकार क्लेशों के भीतर रहने वाला चित्त भी निर्मल ही रहता है॥23॥

यतः धर्मधातु न आत्मा है, न स्त्री और न नपुंसक [न पुरुष] है (अतः) सर्वथा ग्राह्यों से निर्मुक्त होने के कारण (उसमें) आत्मा (ग्राहक) की कल्पना (भी) कैसे की जा सकती है?॥24॥

धर्मधातुस्तव

सभी धर्म आसक्ति (राग आदि) से रहित हैं, अतः (उनमें) स्त्रीत्व, पुंस्त्व आदि (भाव) नहीं होते। राग आदि के निवारण के लिए ही स्त्री, पुरुष आदि का प्रदर्शन (उपदेश) किया गया है॥25॥

शून्यता, अनित्यता और दुःखता इन तीनों के द्वारा चित्त का शोधन होता है, चित्त को विशुद्ध करने वाला श्रेष्ठ धर्म निःस्वभावता (ही) है। 26॥

जैसे गर्भवती स्त्री के पेट में गर्भ होने पर भी दिखाई नहीं देता है, उसी प्रकार क्लेशों से आवृत धर्मधातु भी दिखाई नहीं देता है॥27॥

भूत (चार) और भौतिक (चार) को आधार बनाकर चार विकल्पों की उत्पत्ति होती है, (जिनके द्वारा) नाम, निमित्त और संज्ञा के कारण 'अहं' और 'मम' की कल्पना की जाती है॥28॥

बुद्धों का प्रणिधान निराभास (आभासरहित) और अलक्षण (लक्षणरहित) होता है। प्रत्यात्मसंवित् से युक्त होने के कारण बुद्धों की धर्मता नित्य होती है॥29॥

जैसे खरगोश के सिर पर शृङ्ग मात्र प्रज्ञप्त ही है, न कि सत्, उसी प्रकार सभी धर्मों में (अस्तित्व) कल्पित ही है, सत् नहीं॥30॥

परमाणु के रूप में भी गो-शृङ्ग उपलब्ध नहीं होता है। जैसे पूर्व में होता है वैसा ही (जो) बाद में भी रह जाता है, विद्वानों को उसकी कल्पना क्या करनी है?॥31॥

उत्पाद प्रतीत्य है, निरोध (भी) प्रतीत्य है और एक का भी उत्पाद सम्भव नहीं है तो बाल (पृथग्जन इसकी) कैसे कल्पना करते हैं?॥32॥

शशशृङ्ग और गोशृङ्ग दृष्टान्त दोनों कल्पित लक्षण (आरोपित) हैं।

क्योंकि मध्यमाप्रतिपद् (प्रतीत्यसमुत्पाद) के द्वारा (उनकी) धर्मता (शून्यता) सूचित की गई है॥33॥

जैसे स्वच्छ जलपात्र में नक्षत्र, तारा आदि का प्रतिबिम्ब (स्पष्ट) दिखलाई पड़ता है, वैसे ही परिनिष्पन्न लक्षण है॥34॥

(जो बुद्धवचन) आदि, मध्य एवं पर्यवसान में कल्याणकारक, अविश्ववादक तथा अविचल होते हैं। उनमें (जब) इस प्रकार अनात्म (नैरात्म्य) (उपदिष्ट) है, तब कैसे आत्मा की कल्पना की जाती है?॥35॥

जैसे ग्रीष्मकाल में जल को गरम कहा जाता है, उसे ही शीतकाल में ठण्डा कहा जाता है॥36॥

क्लेश रूपी जाल के द्वारा आवृत को चित्त कहा जाता है, उसे (चित्त को) ही क्लेशों से मुक्त हो जाने पर बुद्ध कहा जाता है॥37॥

चक्षु एवं रूप की अपेक्षा से निर्मल आभास होता है। उस अनुत्पन्न और अनिरुद्ध को धर्मधातु जानना चाहिए॥38॥

श्रोत्र, शब्द और चित्तविज्ञप्ति (श्रोत्रविज्ञान)—तीनों से सुना जाता है, (वैसे ही) स्वविकल्प से धर्मधातु अलक्षण है—ऐसा सुना (जाना) जाता है॥39॥

घ्राण एवं गन्ध के आधार से अरूप और अनिदर्शन घ्राणविज्ञान उत्पन्न होता है। घ्राणविज्ञान की तथता धर्मधातु (विभिन्न प्रकार से) विकल्पित होती है॥40॥

जिह्वा का स्वभाव शून्यता रसधातु भी अभाव (निःस्वभाव) है।

अप्रतिष्ठित विज्ञान की धर्मधातु स्वभावता है॥41॥

काय स्वरूपतः शुद्ध (निःस्वभाव) है स्पर्श-प्रत्यय (आलम्बन) के लक्षणों से तथा (समस्त) प्रत्ययों से विमुक्त को मैं धर्मधातु कहता हूँ॥42॥

चित्तप्रधान धर्मों के प्रति कल्पना एवं कल्पित से रहित समस्त धर्मों की निःस्वभावता (रूप) धर्मधातु (शून्यता) की भावना की जाती है॥43॥

इस प्रकार देखना, सुनना, सूँघना, अनुभव करना तथा स्पर्श करना, इन समस्त धर्मों को यदि योगी इस प्रकार (निःस्वभावतया) जानता है, तो वह निष्पन्नलक्षण है॥44॥

चक्षु, श्रोत्र, नासिका, जिह्वा, काय वं मन—इन छह आयतनों के विशुद्ध हो जाने पर यही तत्त्व का लक्षण है॥45॥

स्वयं चित्त दो प्रकार का दिखाई देता है, जो लौकिक एवं लोकोत्तर है। आत्म-ग्राह से संसार में (भ्रमण करता) है तथा प्रत्यात्मतथता होने पर वही तत्त्व है॥46॥

राग, द्वेष एवं मोह का क्षय ही (श्रावक, प्रत्येकबुद्ध का) निर्वाण है। इन (सबके स्वभाव) का बोध ही बुद्धत्व है, जो प्राणी मात्र का त्राता है॥47॥

सभी ज्ञान और अज्ञान इस कलेवर (शरीर) में ही हैं। (व्यक्ति) अपने विकल्पों से बद्ध होता है और अपनी परिज्ञा से मुक्त होता है॥48॥

बोधि (बुद्धत्व) न (आर्यों के लिए) निकट है न (पृथग्जनों) (के लिए) दूर है, (मार्ग में प्रविष्ट व्यक्ति) बोधि की ओर न गमन करता है और न आगमन करता है। वह इसी क्लेशपञ्जर (पिंजड़े) में बद्ध होकर (तत्त्व का) दर्शन करता है और नहीं करता है (इतना मात्र अन्तर है)॥49॥

सूत्रवर्ग में उक्त है कि आत्माचिन्तक (चित्त के वास्तविक स्वरूप का चिन्तक) प्रज्ञाद्वीप रूपी विहार में परम शान्ति प्राप्त करके विहार करता है॥50॥

(दशबल बुद्ध के) दशबलों द्वारा बाल-पृथग्जन प्रतिपद के चन्द्रमा की भाँति अधिष्ठित किये जाते हैं, किन्तु क्लेश से मलिन सन्तान वाला सत्त्व तथागत को नहीं देख पाता है॥51॥

जैसे प्रेत सागर को सूखा हुआ देखते हैं। उसी प्रकार अज्ञान से दग्ध (आवृत) लोग बुद्धों के (सर्वथा) अभाव की कल्पना करते हैं॥52॥

अल्पपुण्यवान् सत्त्वों का भगवान् क्या कर सकेंगे। इस प्रकार (यह तो) जात्यन्ध (व्यक्ति) के हाथों में मणि रखे हुए की भाँति है॥53॥

पुण्यवान् सत्त्वों के लिए तो प्रकाश से प्रकाशित एवं श्री से युक्त तथा बत्तीस लक्षणों से प्रज्वलित बुद्ध उनके समक्ष (सदैव) स्थित होते हैं॥54॥

उस नाथ ने (अपने) रूपकाय से अनेकों कल्पों तक (इस जगत् में) स्थित रहते हुए विनेयजनों के दमनार्थ (अपने) धातु (रूपी स्वरूप) को नाना प्रकार से (प्रदर्शित) किया है॥55॥

चित्त के विषय को नियत रूप से अवबोध करने से उसमें (नैरात्म्य) ज्ञान प्रवृत्त होता है। स्वसंवेदन विशुद्ध हो जाने पर समस्त भूमियाँ उसी स्वभाव में स्थित हो जाती हैं॥56॥

महेश्वर (बुद्ध के सम्भोग काय) का उत्तम क्षेत्र और अकनिष्ठ क्षेत्र (दोनों) अत्यन्त रमणीय हैं, (क्योंकि वहाँ) स्थित (महाबोधिसत्त्वों के) तीनों ज्ञान एक ही में विलीन हो जाते हैं—ऐसा मैं (नागार्जुन) कहता हूँ॥57॥

धर्मधातुस्तव

बालजनों (सत्त्वों) में सर्वज्ञ (के रूप में स्थित होते हैं) एवं आर्यगणों में नाना प्रकार से जानने वाले के रूप में स्थित होते हैं। महेश्वर (धर्मकाय के रूप में) अपरिमितायु कल्प-कल्पान्तर तक स्थित होने का हेतु (धर्मधातु ज्ञान) है॥58॥

बाह्य (स्थित) सत्त्वों का धातु भी अपरिमित कल्पों तक स्थित होने पर (भी) समय (वह धर्मकायरूपी चित्त) किसके द्वारा संरक्षित होता है? (तथापि उस चित्त में) प्राणियों का प्राण स्थित होता है॥59॥

जिसका हेतु अक्षय है, उसी प्रकार सब का फल भी अक्षय होता है, जो (ग्राह्य-ग्राहक की वसना के) अनवभास के प्रभेद से प्रज्ञा (उत्तम मध्य एवं हीन आदि तीन) के लिए प्रवेश करता है॥60॥

बोधि को न दूर और न आसन्न जानना चाहिए। यथाभूत परिज्ञा के द्वारा छह विषयों का (यथावत्) अवभास होता है॥61॥

जैसे उदक के साथ मिश्रित दूध एक पात्र में संगृहीत होने पर हंस दूध को ग्रहण कर लेते हैं और उदक बिना पिये वैसे ही स्थित रहता है॥62॥

उसी प्रकार क्लेशों के द्वारा मिश्रित (आवृत) ज्ञान काय (भाजन) में स्थित होने पर भी योगी जन ज्ञान को ग्रहण करते हैं तथा अज्ञान का परित्याग करते हैं॥63॥

जब तक ग्राह्य (सत्) की कल्पना की जाती है, तब तक 'अहम्' और 'मम' यह ग्राह भी विद्यमान रहता है। विषयों की निरात्मता का दर्शन हो जाने पर भाव के बीज (अविद्या) का निरोध हो जाता है॥64॥

बुद्ध (जब) परिनिर्वाण प्राप्त करते हैं तो वे पवित्र, नित्य और शुभ के आधार होते हैं। बाल-पृथग्जन उनकी द्वैत (ग्राह्य-ग्राहक) के रूप में

कल्पना करते हैं और (महायानी) योगी जन अद्वय पद के रूप में (जानकर) स्थित होते हैं॥65॥

विविध दुष्कर दान, शील के द्वारा, सत्त्वार्थ संग्रह और सत्त्वोपकारक क्षान्ति के द्वारा—इन तीनों के द्वारा धातु (सत्त्वों के आशय) की पुष्टि होती है॥66॥

सभी (कुशल) धर्मों में वीर्य (उत्साह), ध्यान में चित्त की प्रवृत्ति तथा प्रज्ञा का नित्य सेवन—ये सम्बोधि की पुष्टि के लिए हैं॥67॥

धातु (गोत्र) को पुष्ट करने वाले चतुर्विध धर्म हैं, यथा—1. उपाय (करुणा) सहित प्रज्ञा, 2. प्रणिधानों द्वारा विशोधन, 3. (प्रतिपक्ष) बलों में स्थित होना तथा 4. प्रज्ञा॥68॥

(हीनयानियों द्वारा) बोधिसत्त्वों को नमस्कार नहीं करना चाहिए, ऐसा कथन तो दुर्भाषित है। बोधिसत्त्व का बीज न होने पर धर्मकाय का उत्पाद (सम्भव) नहीं होगा॥69॥

जो इक्षु-बीज के प्रति द्वेष करता है तथा चीनी के भोग की इच्छा करता है। (किन्तु) इक्षु-बीज के बिना उसे चीनी प्राप्त नहीं होगी॥70॥

कोई (कुशल व्यक्ति) इक्षु के बीज का संरक्षण करके उसके समीप स्थित होता है तो यह देखा जाता है कि उससे गुड़, शक्कर और खाँड़ आदि उत्पन्न होते हैं॥71॥

(उसी प्रकार) बोधिचित्त का संरक्षण कर उसके सामीप्य का चिन्तन करना चाहिए। (फलतः ज्ञात होगा कि उसी से) सभी अर्हत्, प्रत्येकबुद्ध एवं बुद्ध उत्पन्न एवं उद्भूत होते हैं॥72॥

धर्मधातुस्तव

जैसे किसान शालि (चावल) के अङ्कुर आदि का संरक्षण करता है। उसी प्रकार अग्रचयान (महायान) के प्रति अधिमुक्ति (श्रद्धा) रखने वाले लोगों का भी (महा) नायक (बुद्धों) के द्वारा संरक्षण किया जाता है॥73॥

जैसे कृष्णपक्ष की चौदहवीं (तिथि) को चन्द्रमा अल्पमात्र दिखाई देता है। उसी प्रकार अग्रचयान (महायान) में अधिमुक्ति (श्रद्धा) रखने वालों को भी बुद्धकाय का किञ्चिद् मात्र दर्शन होता है॥74॥

जैसे (शुक्ल पक्ष की) बाल (प्रतिपदा के) चन्द्रमा में क्षण-क्षण वृद्धि दिखाई देती है, उसी प्रकार भूमि में प्रविष्ट (बोधिसत्त्वों) में भी क्रमशः वृद्धि दिखाई देती है॥75॥

जैसे शुक्लपक्ष के पन्द्रहवें दिन चन्द्रमा पूर्ण रूप से विकसित दिखाई देता है, उसी प्रकार अन्तिम भूमि में पहुँचने पर धर्मकाय भी पूर्णतया स्पष्ट होता है॥76॥

बुद्ध, धर्म (और संघ) के प्रति जिसकी सर्वदा दृढ़ अधिमुक्ति (श्रद्धा) होती है, उसमें वह श्रद्धा प्रत्येक जन्म में अवैवार्तिक चित्त का सम्यग् रूप से उत्पाद करती है॥77॥

कृष्ण धर्मों (वस्तुओं) का परित्याग कर शुक्ल धर्मों का ग्रहण होता है, तब उसका नियत अवबोध होने से, वही प्रमुदिता (प्रथम भूमि) के रूप में अभिव्यक्त की जाती है॥78॥

रागादि नाना प्रकार के मलों से सर्वदा मलिन (चित्त) की पूर्णतया मलरहित शुद्धि विमला (द्वितीय भूमि) कही जाती है॥79॥

क्लेश रूपी जाल को अच्छी तरह से निरुद्ध करने से, प्रभा के प्रकाश से मलरहित और अप्रमाण (असीमित) अन्धकार से विगत (रहित) वह

(तृतीय भूमि) प्रभाकरी (कही जाती) है॥80॥

सदा शुद्धा प्रभा के द्वारा प्रकाशित होने से, संसर्गों का परित्याग करने से ज्ञानरूपी अर्चिष (ज्वाला) से परिवृत वह (चतुर्थ भूमि) अर्चिष्मती मानी जाती है॥81॥

सभी विद्या (स्थानों), कला एवं शिल्प स्थानों तथा नाना प्रकार के ध्यान (भावनाओं) के अत्यन्त दुर्जय क्लेशों से विजयी होने के कारण सुदुर्जया (पाँचवें भूमि) मानी जाती है॥82॥

तीनों प्रकार की बोधि और समस्त सम्पदाओं का संग्रह करनेवाली तथा उत्पत्ति एवं विनाश के विषय में गम्भीरता से देखने वाली उस भूमि को अभिमुखी (भूमि) (छठवीं भूमि) मानते हैं॥83॥

(संसाररूपी) चक्रव्यूह से सर्वदा (ज्ञानरूपी) प्रभाजाल से खेलने वाली तथा संसाररूपी पंक से पार होने के कारण वह दूरंगमा (सातवीं भूमि) कही जाती है॥84॥

बुद्धों द्वारा नियत रूप से सन्धारित तथा प्रज्ञारूपी सागर में प्रविष्ट यह भूमि तथा (उनके समस्त) मनोरथ अनायास (अनाभोग) रूप से सिद्ध करने में वशिताप्राप्त है एवं जो (भूमि) मार परिवार के द्वारा अकम्पित रहती है (वह अचला भूमि है)॥85॥

समस्त (चारों) प्रतिसंविद् में पारंगत वह योगी और विभिन्न वचनों के द्वारा धर्मदिशना करने से वह भूमि साधुमती मानी जाती है॥86॥

प्रज्ञास्वरूप इनका काय (जिस भूमि में) विमल एवं आकाश के समान हो जाता है और (तब) सभी प्रकार से बुद्धों के धर्ममेघों को धारण करती है। अतः यह धर्ममेघ नामक (दसवीं भूमि) समुद्भूत होती है। ॥87॥

धर्मधातुस्तव

समस्त बुद्ध धर्मों का आश्रय और समस्त (बोधिसत्त्व) चर्याओं के फल से समन्वित तथा आश्रयपरावृत्ति ही धर्मकाय कहा जाता है॥88॥

वासनाओं से मुक्त (धर्मकाय) अचिन्त्य है (किन्तु) बुद्ध में स्वयं संसार की वासना का विचार (विद्यमान रहता है), यह विचाराधीन है, फिर भी आप सर्वदा अचिन्त्य हैं, (अतः) आपको कौन जान सकता है॥89॥

(जो) समस्त वाक् गोचर से अतीत है, समस्त इन्द्रियों का गोचर नहीं है तथा मनोविज्ञान द्वारा अवबोधनीय है, ऐसा जो जो भी है, उसकी वन्दना करते हुए स्तुति करता हूँ॥90॥

क्रमशः (मार्ग में) प्रवृत्त होने से बुद्ध के महायशस्वी पुत्र (बोधिसत्त्व) (दसवीं भूमि प्राप्त होते ही) धर्ममेघ ज्ञान के द्वारा धर्मतारूपी शून्यता का साक्षात् करते हैं॥91॥

(तत्पश्चात्) चित्त को अच्छी तरह प्रक्षालित करने के कारण जब उसका चित्त (सूक्ष्म वासनारूपी) संसार सागर का अतिक्रमण कर लेता है, तब वह महापद्म रूपी आसन पर प्रतिष्ठित होता है॥92॥

अनेक रत्न (रूपी) पंखुरियों के प्रकाश द्वारा तथा कमनीय किञ्जल्क (पराग) द्वारा, अनेक कोटिपद्मों के द्वारा (वह स्थान) सर्वदा परिवृत्त रहता है॥93॥

अचिन्त्य बौद्ध धर्म दशबलों से परिपूर्ण, (चार) अभय (गुणों) से जो तृप्त है (वह) समस्त प्रपञ्चों से उपहत नहीं है॥94॥

(क्योंकि उन्होंने पूर्व जन्मों में) समस्त मार्गों के अच्छी तरह आचरण द्वारा अत्यधिक पुण्य एवं ज्ञान (सम्भार) का संचय किया है, अतः वे तारामण्डलों के द्वारा परिवृत्त-पूर्ण चन्द्रमा की (भाँति) सर्वदा

(सुशोभित) हैं।।95।।

सूर्यरूपी बुद्ध के कर अर्थात् पाणि (हाथ) में विमलरत्न प्रज्वलित होता है। वे (अपने) प्रिय (निकटतम) पुत्रों (बोधिसत्त्व शिष्यों) को अभिषेक प्रदान करते हैं। अतः वे (उस प्रकार का) अभिषेक समस्त प्राणियों के लिए भी (सुलभ) है।।96।।

महायोगी (बुद्ध) उस (पद्मासन) पर स्थित होकर दिव्यचक्षु से संमोह से ग्रस्त एवं हीन, जगत् के मूढ लोगों को दुःख से विक्षिप्त एवं भयभीत देखकर।।97।।

उन (बुद्ध) के काय से प्रभाएं अनाभोग रूप से निकलकर मोह रूपी अन्धकार में अवमग्न (सत्त्वों) के (धर्म) द्वारों को खोलती हैं।।98।।

उपधिशेषनिर्वाण प्राप्त लोग (निरुपधिशेष) निर्वाण की इच्छा करते हैं। यहाँ (महायान में) चित्त का विमल होना (निर्वाण कहा गया) है।।99।।

समस्त (आवृत) सत्त्वों की निःस्वभावता का वह स्वभाव भी (उस दसवीं भूमि में स्थित) उस (बोधिसत्त्व) का गोचर है। उस (निःस्वभावता) का द्रष्टा तो बोधिसत्त्व का अत्यन्त विमल इन्द्रिय अर्थात् धर्मकाय है।।100।।

निर्मल धर्मकाय में एवं सागररूपी ज्ञान में स्थित होकर विभिन्न मणियों की भाँति (बुद्ध भी) (रूपकाय) से परम सत्त्वार्थ करते हैं।।101।।

महान् आचार्य नागार्जुन प्रणीत धर्मधातुस्तव समाप्त। यह भारतीय उपाध्याय कृष्ण पण्डित तथा लोच्नावा छुलट्टिम ग्यलवा (शीलविजय) द्वारा अनूदित है।।

अनुवादक: डॉ. लोब्संग दोर्जे रबलिंग